संस्कृत साहित्य सौरभ
यशस्तिलक

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

३०

सोमदेवसूरि-कृत

यशस्तिलक

श्री विद्याधर जोहरापुरकर
द्वारा
कथासार
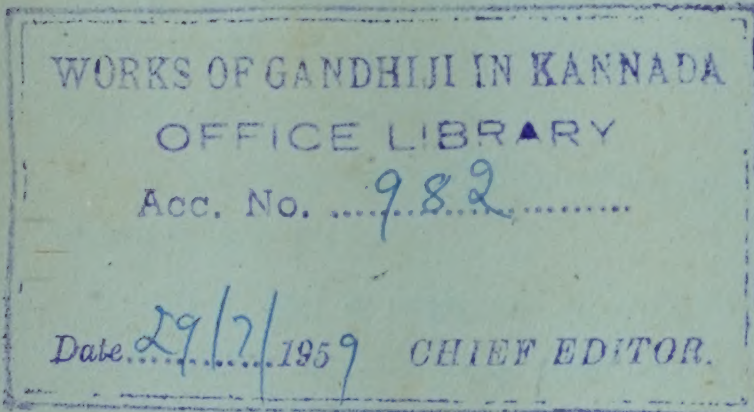
विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

१९५७

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली
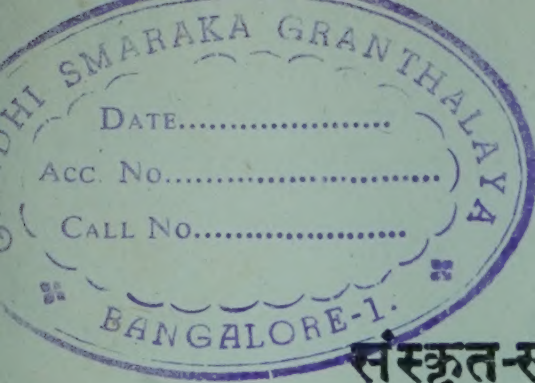
संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिंदी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें, परंतु उसका रस वे हिंदी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिंदी में प्रस्तुत करें। फलतः अबतक कई पुस्तकें निकाल दी गई हैं।

इस पुस्तक-माला से हिंदी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। टाइप भी मोटा लगाया गया है।

न पुस्तकों का संपादन हिंदी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

आशा है, हिंदी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी।

—मंत्री

भूमिका

जैन-साहित्य में यशोधर महाराज की कथा बहुत प्रसिद्ध है। उसको लेकर अनेक विद्वानों ने १०वीं शती से १६वीं शती तक अनेक पुस्तकों की अनेक भारतीय भाषाओं में रचना की है। सोमदेव सूरि का यह प्रस्तुत ग्रंथ इन्हींपर लिखा गया है। यह गद्य और पद्य दोनों में है, इसलिए इसे चम्पू कहते हैं। इसकी संस्कृत बाणभट्ट की तरह ललित, प्रौढ़ और रस-पूर्ण है।

सोमदेव सूरि आचार्य नेमिदेव के शिष्य थे। इन्होंने यशस्तिलक की रचना शक-संवत् ८८१ में कर्नाटक प्रांत के गंगधारा शहर में पूरी की। उस समय राष्ट्रकूट वंश के श्री कृष्णराजदेव सम्राट थे। इनका दूसरा ग्रंथ नीतिवाक्यामृत है जो भारतीय राजनीति का सरल किंतु शास्त्रीय रूप प्रस्तुत करता है।

इस पुस्तक में उदाहरणों द्वारा असत्य, लोभ और हिंसा के ऊपर अहिंसा, सत्य और संतोष की प्रतिष्ठा की गई है। उपदेशात्मक होते हुए भी पुस्तक कहीं अरोचक नहीं हो पाई है।

—संपादक
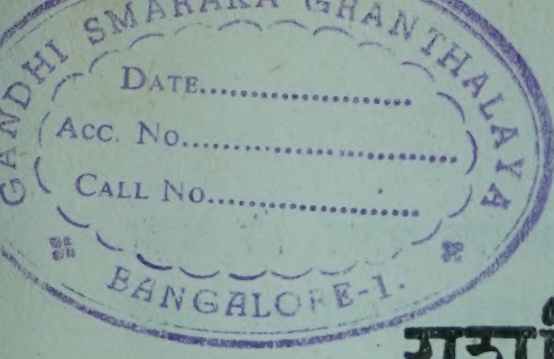
यशस्तिलक

: १ :

प्राचीन काल में भारतवर्ष में यौधेय नाम का एक सुंदर और समृद्ध देश था। इसकी राजधानी इंद्रपुरी के समान वैभवशाली थी। हरिवंशीय चण्डमहासेन का पराक्रमी पुत्र राजा मारिदत्त इस देश का स्वामी था। राजा मारिदत्त का स्वभाव बहुत अच्छा था। किंतु जिस प्रकार चंदन के वृक्ष पर सांप लिपटे रहते हैं उसी प्रकार उसके चारों ओर स्वार्थी लोगों ने घेरा डाल रखा था। इन दुर्जनों का नेता वीरभैरव नाम का पुरोहित था। एक बार उसने राजा से कहा, "आपकी कुलदेवी चण्डमारी की पूजा कई दिन से नहीं हुई। यदि आप एक सुंदर पुरुष और स्त्री की बलि उसको भेंट करें तो, वह प्रसन्न होकर आपको विद्याधर लोगों का चक्रवर्ती राजा बना देंगी।" राजा ने वीरभैरव के कहने पर विश्वास कर लिया और चाण्डालों को आज्ञा दी कि वे बलि के लिए एक सुंदर जोड़ा पकड़ लावें।

दैवयोग से उन दिनों राजपुर में सुदत्त नाम के महात्मा आये हुए थे। कठोर तपस्या से उनके सारे दोष

दूर हो गए थे और उन्हें दिव्य-ज्ञान प्राप्त हो चुका था। बरसात जैसे धूप से तपी हुई धरती को शांत कर देती है उसी प्रकार उनके उपदेश से श्रोताओं का मन शांत हो जाता था। इन्हीं आचार्य सुदत्त के संग में अभयरुचि नाम का एक राजकुमार छोटी आयु में दीक्षित हुआ था। वह बहुत ही सुंदर, बुद्धिमान और शांत था। उसके साथ उसकी बहन अभयमति भी दीक्षित हो गई थी। एक दिन ये दोनों दोपहर के समय भिक्षा के लिए जा रहे थे। तभी मारिदत्त के चाण्डालों ने उन्हें देखा। शांत स्वभाव के इन साधुओं को देखकर पहले तो उनके मन में दया उपजी, लेकिन राजा की आज्ञा का पालन तो करना ही था और इससे सुंदर जोड़ा उन्हें और कहां मिल सकता था। इसलिए वे उन्हें चण्डमारी देवी के मंदिर में ले गए। राजा पहले ही वहां पहुंच गया था।

चण्डमारी का देवालय बहुत ही गंदा था; बैल, चिड़िया, हिरण, बकरी और भैंसों का खून चारों ओर फैला हुआ था। जगह-जगह तलवार, छुरे, कटारी आदि शस्त्र पड़े थे। मूर्ति की भयंकरता देखकर डर लगता था। शरीर पर खून बह रहा था। कमर पर कटे हुए हाथ-पैर लटक रहे थे। गले में रुण्ड-मुंडों की

माला थी। माथे पर चिता की राख मली हुई थी। जीभ बाहर निकल रही थी। बड़े-बड़े दांत चमक रहे थे। भौंहें चढ़ी हुई थीं। हाथ में शराब की सुराही थी। ऐसा मालूम होता था मानो वह साक्षात यमराज की बहन हो।

ऐसे भयानक मंदिर में राजा मारिदत्त नंगी तलवार लिए बैठा था। यह देखकर राजकुमार अभयरुचि को बड़ा खेद हुआ। फिर भी उसने धैर्य धारण किया और बहन को धीरज बंधाया। महापुरुषों का धैर्य संकट के समय अधिक बलवान हो जाता है। राजा मारिदत्त ने जैसे ही साधुओं की उस जोड़ी को देखा उसके हृदय में शांतभाव पैदा होने लगा। उसके मुख की कठोरता देखते-देखते तिरोहित हो गई। शरद ऋतु आ जाने पर जैसे तालाबों का पानी निर्मल हो जाता है, उसी तरह इन साधुओं को देखकर राजा का मन प्रसन्न हो उठा। उसने तलवार छोड़ दी और उन दोनों को आदरपूर्वक एक आसन पर बैठाया। जब राजकुमार अभयरुचि ने देखा कि राजा के विचारों में परिवर्तन हो रहा है तो उसने आशीर्वाद देते हुए कहा, "क्षत्रियों का कर्तव्य लोगों की रक्षा करना है। इस कर्तव्य का पालन करने में भगवान जिनेन्द्र

का स्मरण तुम्हारी सहायता करे।"

राजकुमार के ये गंभीर बचन सुनकर राजा और भी आश्चर्य में डूब गया। सोचने लगा—कहां तो इनका राजकुमारों जैसा कोमल शरीर और कहां यह कठोर तपस्या। संसार के सुखों को छोड़कर इन दोनों ने यह कठिन मार्ग क्यों स्वीकार किया है! उसने यह प्रश्न विनयपूर्वक राजकुमार से पूछा। राजकुमार समझ गया कि यह उपदेश के योग्य अवसर है। बोला, "राजन्, यह कथा बहुत लंबी है। यदि तुम बहुत उत्सुक हो तो सुनो।"

राजा मारिदत्त की उत्सुकता प्रकट करने पर राजकुमार ने कहना शुरू किया, "भारतवर्ष में अवंति नाम का एक वैभवशाली प्रदेश है। उसकी राजधानी उज्जैयिनी सिप्रा नदी के तट पर है। इसके विशाल भवनों पर लहराती हुई पताकाओं से तुरंत ही इसके वैभव का पता चल जाता है। इस नगर में पहले यशोध नाम का राजा राज्य करता था। वह बहुत ही पराक्रमी और सदाचारी था। राजाओं के योग्य सारे गुण मानों उसमें इकट्ठे हो गये थे। सारे भारत में उसकी कीर्ति फैली हुई थी। उसकी रानी का नाम चन्द्रमती था। वह बहुत ही सुंदर

और विनम्र थी। राजा उसको बहुत प्यार करता था। एक बार रात के आखिरी पहर में चंद्रमती ने एक अनोखा स्वप्न देखा। इंद्रदेव स्वर्ग से उतरकर उसके पुत्र हुए और वृहस्पति ने बड़ी धूमधाम से उनका जन्मोत्सव मनाया। रानी का यह स्वप्न सुनकर राजा यशोध बहुत प्रसन्न हुए। समय आने पर यह स्वप्न सच ही हुआ। रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। बड़ा आनंद मनाया गया। नृत्य, संगीत से सारा नगर गूंज उठा। दान से दूर-दूर के याचक तृप्त हो गए। बालक का नाम यशोधर रखा गया। धीरे-धीरे वह बाल कुमार बढ़ने लगा। उसकी क्रीड़ा से माता-पिता-बहुत सुखी होते थे। वह कभी पिता की गोद में बैठकर दूध पीने का हठ करता तो, कभी माता के मुख पर मूछें ढूंढने की कोशिश करता। कभी पूजा का नैवेद्य खुद खा जाता। कभी पांव में करधनी बांध-कर रोने लगता।

"जब वह कुछ बड़ा हुआ तो राजा ने उसका उप-नयन संस्कार किया और उसको गुरु के पास भेज दिया। थोड़े ही दिनों में उसने लिपि, संख्या, न्याय, व्याकरण, राजनीति, युद्ध-विद्या आदि शास्त्रों में असाधारण योग्यता प्राप्त करली। धीरे-धीरे वह पिता

के राज्य-कार्य में योग देने लगा। एक कुशल अमात्य के समान अपने पुत्र की सहायता पाकर राजा यशोध की चिंता बहुत कुछ कम हो गई।

"एक बार राजा राजसभा में जाने की तैयारी कर रहे थे। वस्त्र पहनकर उन्होंने आइने में देखा। सहसा सिर पर एक सफेद बाल दिखाई दिया। इस छोटे-से बाल ने उनके दिल में एक तूफान पैदा कर दिया। वह सोचने लगे—अहो, मैं बूढ़ा हो गया। मेरा यौवन बीत गया। मुझे अब तप करना चाहिए। यही सूचना देने के लिए यमराज ने इस सफेद दूत को भेजा है। यह संसार सचमुच बड़ा चंचल है। जो कुछ यहां मिलता है वह यहीं नष्ट हो जाता है। हरेक जीव को अपने किये का फल अवश्य भोगना पड़ता है। पूरी तरह सुखी वह कभी नहीं होता। सौंदर्य होता है बल नहीं होता; बल होता है तो धन नहीं होता। धन मिलता है तो आयु नहीं मिलती। इसीलिए यदि इस दुर्लभ मनुष्य-जीवन को सफल करना है तो अब मुझे मोक्ष के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

"ऐसा निश्चय करने के पश्चात् राजा ने कुमार यशोधर को एकांत में बुला भेजा। कहा, 'वत्स, तुमने सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

हमारे साथ तुम्हें राजकार्य का भी अनुभव हो गया है। अब इस राज्य की बागडोर तुम्हें संभालनी है। तुम्हें कोई उपदेश करने की जरूरत नहीं है। लेकिन फिर भी यौवन के प्रभाव से कोई प्रमाद न हो जाय इसका ध्यान रखना। लक्ष्मी सचमुच बड़ी विचित्र है। इसका जन्म समुद्र से हुआ है और उसीके समान यह जड़ है। इसीके साथ कालकूट विष पैदा हुआ है। इसलिए उसकी भयंकर मोहकता भी इसमें आगई है। इस लक्ष्मी का उन्माद तुम्हें सन्मार्ग से विचलित न करे इसका ध्यान रखना। तुम्हारे राज्य में लक्ष्मी और सरस्वती का समागम हो। हमारे वंश का यह प्रधान राज्य तुम्हारे शासन में दीर्घकाल तक सुख और समृद्धि का अनुभव करे। अब हम थक गये हैं, आराम करना चाहते हैं। चौथेपन में संन्यास लेकर तप करना, यह हमारे कुल की रीति है।'

"पिता का निश्चय सुनकर यशोधर को बहुत दुःख हुआ। उसने कहा, 'तात! आपका निश्चय धर्मशास्त्र के अनुसार ठीक ही है। किंतु आपके बिना मुझे यह राज्य कैसे सुख दे सकेगा। अबतक मैंने जो सफलताएं प्राप्त की हैं वे तो आपकी ही कृपा का फल हैं। आप ही सारे काम देखते थे। यदि अब आप तपोवन में

जाते हैं तो मैं भी आपके साथ चलूंगा। शरीर से छाया अलग नहीं रह सकती।'

"राजा हँस पड़ा। कुछा बोला नहीं। केवल कंठ की मोतियों की माला उतारकर यशोधर को पहना दी। इसके बाद मंत्रियों को बुलाकर उसके राज्याभिषेक और विवाह के लिए आदेश दिया। स्वयं आचार्य से दीक्षा ले ली। राजा की आज्ञा के अनुसार पुरोहित ने अच्छा मुहूर्त देखा, फिर सिप्रा नदी के तट पर एक विशाल मण्डप बनाया। इसके चारों ओर नाना देशों से आये हुए राजाओं के लिए निवास-स्थान बनायें गए। राजा के लिए कलिंग देश से एक तरुण सुंदर हाथी लाया गया। उसका नाम उदयगिरि था और वह चलते हुए किले के समान प्रचण्ड और अजय था। अश्व-सेना का अग्रणी विजय वैनतेय नाम का उत्तम अश्व मंगाया गया। वह काम्बोज देश में पैदा हुआ था और उसकी हुंकार समुद्र के गर्जन के समान गंभीर थी। राज्याभिषेक और विवाह दोनों के लिए माघ शुक्ला पंचमी, गुरुवार, उत्तरा नक्षत्र और हर्षण योग का मुहूर्त निश्चय हुआ था। उचित समय पर यशोधर ने समारोह के साथ मण्डप में प्रवेश किया। वहां कुल-देवता की मूर्ति स्थापित की गई थी। उसके पास ही

कुल-परंपरा से आये हुए अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र रखे हुए थे। संबंधी लोगों की भीड़ लगी हुई थी। इस उत्साह के बीच सेनापति ने यशोधर को सिंहासन पर बिठाया। 'चारों समुद्रों तक तुम्हारा राज्य फैले' ऐसे मंगल श्लोक का उच्चारण करके समुद्र के जल से उसका अभिषेक किया गया। गंगा, सिंधु, गोदावरी आदि पवित्र नदियों के पानी से भी अभिषेक किया गया। शुभ्र वस्त्र और अलंकार पहनाये गए। फिर यशोधर ने विधिपूर्वक अग्नि में आहुतियां डालीं। ब्राह्मणों ने उच्च स्वर से मंत्रघोष करके उसकी मंगल कामना की और अंत में महाराज श्रीवर्मा की कन्या अमृतमति से यशोधर का विवाह-संस्कार संपन्न हुआ।

"विवाह के पश्चात् यशोधर गृहस्थ बना। अब उसने राजपद स्वीकार किया। रानी, हाथी और अश्व को अपने ही साथ पट्ट-बंध किया। सारे राजाओं से श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने के प्रतीक-स्वरूप ऊंचे सिंहासन पर वह बैठा। छत्र, चंवर, खड़ग आदि राज्य-चिह्न उसने धारण किये। मंत्री, पुरोहित आदि अधिकारी नियुक्त किये। कुल के वृद्ध पुरुषों का आशीर्वाद स्वीकार किया। तदनंतर आनंदोत्सव मनाने के लिए नृत्य-गीत आदि समारोहों में कुछ समय बिताया और

अंत में महारानी के साथ हाथी पर बैठकर वह राजधानी लौटा।

"नये राजा के स्वागत में सारी उज्जयिनी नगरी प्रफुल्लित हो उठी। ध्वज पताकाओं और तोरणों से मानो नये राजा की शक्ति आकाश तक पहुंच गई।

: २ :

"यशोधर राजा पिता का राज्य पाकर सुख से दिन बिताने लगा। सुबह बंदीजनों द्वारा गाये हुए मंगल-गान सुनकर वह जाग उठता। पुरोहितों का आशीर्वाद लेकर राजवैद्य की सलाह सुनता। नित्यकर्मों से छुट्टी पाकर मंत्रियों के साथ राजनीतिक विषयों पर चर्चा करता। भोजन के पश्चात् दोपहर को प्रजा को दर्शन देता। संध्या के समय नगर के बाहर अपनी विशाल सेना को देखता। उसमें दक्षिण प्रदेश के सैनिक तलवार का उपयोग करते थे। उत्तर प्रदेश के साफा बांधे हुए सैनिक घोड़ों पर बहुत ही अच्छे दिखाई देते थे। पूर्वी प्रदेश के सैनिकों के विशाल मदमत्त हाथी सूंड उठाकर राजा को प्रणाम करते थे। धनुष-बाण लिये हुए पश्चिम प्रदेश के सैनिक अपनी दाढ़ी और मूछों में बड़े भव्य मालूम होते थे। सेना का

निरीक्षण करने के बाद राजा दरबार में आता और दूसरे देशों के दूतों से मुलाकात करता। उनके राज्यों के उपहार ग्रहण करता। इस प्रकार राज-कार्य पूरा होने पर मनोरंजन के लिए कुछ समय नाटक आदि देखने में बिताता, फिर विद्वानों की तत्त्व-चर्चा में भाग लेकर अपने ज्ञान की वृद्धि करता। अंत में महलों में अपनी महारानी के पास चला जाता। इस प्रकार शास्त्र के बताये हुए मार्ग पर चलते हुए वह अपना कर्तव्य पूरा कर रहा था और दिन दूने रात चौगुने उसका यश बढ़ रहा था।

"एक दिन राजकार्य के बाद वह कुछ थका-सा दिखाई देता था, इसलिए दरबार जल्दी ही समाप्त कर दिया गया। मंत्रियों से विदा लेकर, पुरोहितों को प्रणाम करके और सेवकों को उचित पुरस्कार देकर वह रानी अमृतमति के महल में चला गया। शैय्या पर बैठी हुई अपनी प्रिय रानी को देखकर उसकी सारी थकावट दूर हो गई। उसका हृदय उल्लास से भर उठा। उसे लगा जैसे अमृतमति का दर्शन अमृत के समान शीतल हो। बहुत देर तक उससे बातें करता रहा। इसके पश्चात् सोने के लिए लेट गया। लेकिन कुछ ही क्षण बाद उसने जो कुछ देखा उससे वह हतप्रभ रह गया।

"उसे सोया जानकर रानी अमृतमति धीरे-से पलंग से उतरी। इधर-उधर देखकर उसने फूलों का हार उतार दिया और शील का भी त्याग कर दिया। दासी का वेश धारण किया और दरवाजे खुले छोड़कर बाहर चली गई। कुछ पल तो राजा कुछ सोच नहीं सका लेकिन फिर वह भी चुपके से उठा और तलवार लेकर उसके पीछे-पीछे चल दिया। धीरे-धीरे चलते हुए रानी वहां पहुंची जहां हाथी बंधते थे। उनके पास ही एक झोपड़ी में घासफूस पर एक महावत सो रहा था। उसका चेहरा कठोर था और आंखें लाल थीं। कपड़े मैले कुचेले थे और बाल रूखे थे। रानी उसके पांव सहलाने लगी। वह जाग उठा और रानी को देखते ही उसने उसके बाल खींचने और उसे पीटना शुरू कर दिया। रानी सबकुछ सहती रही और गिड़-गिड़ाती रही और राजा देखता रहा। वह क्रोध से कांप रहा था। तलवार उसके हाथ में थी, चाहा कि एक ही प्रहार में इन दोनों का अस्तित्व समाप्त कर दे; किंतु सहसा मन में एक विचार उठा––ऐसा करने से तो यह बात सबको मालूम हो जायगी। लोग मेरी निंदा करेंगे। मेरे कुल को कलंक लगेगा। स्त्री की हत्या करने का अपराध मरने पर भी दूर नहीं होगा। जब

युवराज यशुमति पूछेगा, 'मां क्यों मारी गई ?' तो मैं क्या जवाब दूंगा । और फिर इस अपराध के लिए मृत्यु की सजा तो बहुत कम है। इसे तो मरते दम तक घृणा में घुलना चाहिए । ऐसा सोचकर राजा वहां से वापस लौट आया। कुछ देर बाद रानी भी लौट आई लेकिन राजा की दृष्टि में अब वह अमृतमत्ति नहीं रह गई थी । उसका दिल सूना हो गया था । उसे बार-बार शास्त्र के वचन याद आ रहे थे । उसे संपत्ति की असारता अनुभव हो रही थी । मुनियों के पवित्र आचरण उसके मस्तिष्क में घूम रहे थे ।

"लेकिन यह सब होते हुए भी वह नियमानुसार राजसभा में पहुंचा । उसकी माता चंद्रमति भी वहां आई हुईं थीं । उनको प्रणाम करके और उचित आसन देकर वह उपदेश सुनने लगा । संसार की असारता का उपदेश सुनकर आज वह बहुत प्रसन्न हुआ । राजमाता ने जब यह देखा तो वह चिंतित हो गईं । बोली, 'पुत्र आज तुम उदास क्यों हो ? असारता का यह उपदेश इतने ध्यान से क्यों सुन रहे हो ?'

राजा ने कहा, "आज सुबह मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा है । देखा कि कुमार यशुमति अब तरुण

हो गया है। राजपाट मैंने उसे सौंप दिया है। मैं बन जा रहा हूं। सुबह का स्वप्न झूठा नहीं होता, मां। सोच रहा हूं क्यों न मैं ऐसा ही करूं। यही कुल की परंपरा है। पिताजी ने भी तो यही किया था।"

"उसका यह उत्तर सुनकर चंद्रमति बहुत चिंतित हो उठी। बोली, 'पुत्र, आज तुम यह बच्चों जैसी बातें क्यों कर रहे हो ? खाने-पीने में कुछ गड़बड़ होने पर वात-दोष से स्वप्न दीखा ही करते हैं। भला उन्हें भी कोई सच मानता है। हमारी दासी ने भी आज सुबह एक स्वप्न देखा है कि ब्राह्मणों ने श्राद्ध में उसे खा डाला है। तो क्या यह स्वप्न सच हो सकता है। तुम्हें इतना बड़ा साम्राज्य मिला है। तुम्हारी हर इच्छा पूरी हो सकती है। फिर किसलिए तुम तप करना चाहते हो। तुम्हें स्वप्न के कारण बहुत ही दुःख हुआ हो तो हम अपनी कुलदेवी को कोई बलि अर्पित कर उसकी शांति कर देंगे।'

: ३ :

"चंद्रमति का यह नया प्रस्ताव सुनकर राजा संकट में पड़ गया। कहा, 'मां, आज तुम कैसी बातें कर रही हो। हम क्षत्रिय जीवों की रक्षा करने के

लिए होते हैं। हम ही धर्म के नाम पर उनका वध करने लगे तो अनर्थ होगा। प्रजा हमारा अनुकरण करेगी। राजा का अस्त्र शत्रु के लिए होता है, दीन पशुओं के लिए नहीं। क्या तुम्हींने मुझे नहीं बताया है कि मेरु पर्वत-जितने सोने के दान से एक जीव का दान श्रेष्ठ है।"

"रानी सोचने लगी—यशोधर ने अभी इंद्रार्चित जैन साधु से भेंट की थी, उसीका यह परिणाम है। कहने लगी, 'बेटा, जान पड़ता है उस नंगे साधु ने तुम्हारे चित्त में यह भ्रम पैदा कर दिया है। कलि-युग में पैदा हुए इन जैन साधुओं के कहने से क्या तुम प्राचीन वैदिक पद्धति को छोड़ दोगे। तुम्हें शिव, विष्णु, सूर्य आदि देवताओं की भक्ति करनी चाहिए। ये देवता अपने भक्तों की अभिलाषाएं पूरी करते हैं। इनको छोड़कर तुम साधुओं का अनुकरण मत करो।'

"राजा और भी दुखी हुआ। कहा, 'मां, मैं तुमसे विवाद नहीं करना चाहता। गुरुजनों से विवाद करना कल्याणकारी नहीं होता। लेकिन सोचो तो, जिस प्राण-वध को हम दण्ड के योग्य मानते हैं वह धर्म-कार्य कैसे हो सकता है ? ऐसे तो और भी लोग हैं जिन्होंने मद्यपान और ब्राह्मण-वध को भी धर्म माना है। क्या

मैं भी उनका अनुकरण कर सकता हूं ?'

"चंद्रमति समझ गई कि यशोधर अब अधिकार-सम्पन्न है। तीखे वचन उसपर प्रभाव नहीं डाल सकते। तब विनम्र स्वर में वह बोली, 'तुम तो स्वयं बुद्धिमान हो। मैं तुम्हें और क्या सिखाऊं। समुद्र को नमक अर्पण करने से क्या लाभ होगा। वशिष्ठ, विश्वामित्र से ऋषियों के मार्ग को तुम्हें नहीं छोड़ना चाहिए। पशु-वध न करो, हम आटे का मुर्गा बनाकर उसकी बलि देंगे और उसीका प्रसाद पशु-मांस समझकर ग्रहण करेंगे।'

"माता का अपमान न करने की इच्छा से यशोधर ने उनकी यह बात मान ली। साथ ही राजकुमार यशुमति के युवराज-पद के अभिषेक का प्रबंध करने की आज्ञा भी दी।

"जब यह समाचार रानी अमृतमति के पास पहुंचा तो उसे विश्वास हो गया कि राजा ने उसके खोट को देख लिया है, इसलिए दीक्षा लेने का राजा का विचार सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। लेकिन ऊपरी तौर से अपनी पति-भक्ति दिखाते हुए उसने कहा, 'महाराज, आज तक आप मुझपर कृपा करते रहे हैं। वनवास में भी मुझे साथ ही ले जायं। पुराने समय में

राम के साथ सीता, अर्जुन के साथ द्रौपदी और दिलीप के साथ सुदक्षिणा ने वन-गमन किया था।'

"रानी की यह ढिठाई देखकर राजा उस दुख में भी हँस पड़ा। सोचने लगा कि यह कुलटा कैसी पति-भक्ति की बातें कर रही है। सचमुच इन स्त्रियों की मति बड़ी ही निष्ठुर, चंचल और माया-पूर्ण होती है। राजा इस प्रकार सोच ही रहा था कि उसे बलिदान की तैयारी की सूचना मिली। स्नानादि से छुट्टी पाकर वह माता के साथ मंदिर की ओर चल पड़ा। मार्ग में अनेक अपशकुन हुए। लेकिन राजा ने उनपर कोई ध्यान न दिया। मंदिर में जाकर विधिपूर्वक पूजा की और मुर्गे की बलि चढ़ाई।

"रानी चंद्रमति पुत्र के इस आज्ञापालन से बहुत प्रसन्न हुई। लेकिन अमृतमति को डर हुआ कि राजा का वैराग्य कहीं नष्ट न हो जाय, इसलिए उसने आटे के मुर्गे में विष मिला दिया। उसका पकवान खाकर चंद्रमति और यशोधर दोनों तुरंत मर गए। ऊपर से अमृतमति ने बहुत हाहाकार मचाया; लेकिन मन-ही-मन वह बहुत प्रसन्न हुई।

: ४ :

"अंतिम समय में पशु-बलि के संकल्प का जो महापाप चंद्रमति और यशोधर ने किया था उसके फलस्वरूप मरने के बाद उन्होंने पशु-योनि में जन्म लिया। यशोधर मोर के रूप में पैदा हुआ और चंद्रमति ने कुत्ते के रूप में जन्म लिया। दैवयोग से वह सुंदर मोर एक व्याध को दिखाई दिया। उसने उसे पकड़कर यशुमति राजा को दे दिया। इसी प्रकार वह बलवान कुत्ता भी राजा के पास पहुंच गया। दोनों जीव फिर अपने पुराने निवास-स्थान पर आ गए।

"एक बार उस मोर ने रानी अमृतमति को महावत के पास देखा। सहसा उसे पूर्व-जन्म की बात याद हो गई। जैसे तैसे पिंजड़े से निकलकर उसने महावत पर हमला किया और अपनी चोंच और नाखूनों से उसे घायल कर दिया। रानी अमृतमति को क्रोध आया और पास ही पड़े हुए कलश को उसपर फेंक मारा। वह घायल होकर सीढ़ियों पर लुढ़क गया। तभी कुत्ते ने उसे देखा। समझा यह अच्छा शिकार है, इसलिए उसे मुंह में पकड़कर यशुमति के पास पहुंचा। राजा ने समझा कि इस कुत्ते ने ही उसके प्यारे मोर को मार डाला है। यह सोचकर उसने कुत्ते को मार डाला।

"इसके बाद वे दोनों उज्जयिनी नदी के पास सिप्रा नदी में मछली के रूप में पैदा हुए । भाग्य की बात कि एक धीवर ने उनको पकड़ा और फिर राजा यशुमति के महल में पहुंचा दिया । इन दिनों राजा अपने पिता और पितामह का श्राद्ध कर रहा था। दोनों मछलियां ब्राह्मण भोजन में काम आईं । संसार की कैसी विडंबना है कि यशोधर की आत्मा को शांति देने के लिए यशोमति उसीके जीवन की हत्या कर रहा था। चंद्रमति जिस पद्धति की प्रशंसा कर रही थी उसका जीव अब उसीका शिकार हो रहा था।

"इसके बाद वे दोनों अभागे जीव उज्जयिनी के पास ही एक गांव में दो मुर्गों के रूप में पैदा हुए । दोनों बड़े बलवान थे। वसंतोत्सव के अवसर पर उनकी लड़ाई दिखाने के लिए एक जल्लाद उन्हें कामदेव के मंदिर के बगीचे में ले गया । उस बगीचे में उसे आचार्य सुदत्त के दर्शन हुए । कलिंग का विशाल साम्राज्य छोड़कर उन्होंने कठोर मुनिव्रत धारण किया था। जल्लाद उनका उपदेश सुनने लगा। उपदेश सुनते-सुनते मुर्गों को अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। अपने पापों का स्मरण कर उन्हें बहुत दुःख हुआ और भगवान सुदत्त का उपदेश सुनकर धर्म-मार्ग

पर उनकी दृढ़ श्रद्धा हो गई। और तो क्या उस जल्लाद को भी अपने काम से घृणा होने लगी। इस धर्म-चिंतन का यह प्रभाव हुआ कि अगले जन्म में वे दोनों जीव यशुमति राजा की रानी कुसुमावलि के उदर से युगल भाई-बहन के रूप में प्रगट हुए। उनके गर्भ में आते ही रानी को सारे जीवों को अभय दान देने की इच्छा हुई। इसलिए उनका नाम अभयरुचि और अभयमति रखा गया। विधेयराज कल्याणमित्र की प्रेरणा से एक बार राजा यशुमति आचार्य सुदत्त के दर्शन करने गया। उनकी दयालुता और ज्ञान का परिचय पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। कौतूहलवश उसने अपने पूर्वजों की गति के बारे में आचार्य से प्रश्न किया। उत्तर देते हुए वह बोले, 'तुम्हारे पितामह यशोघ निर्दोष तप के प्रभाव से ब्रह्मलोक में इंद्र-पद का अनुभव कर रहे हैं। तुम्हारी माता अमृतमति अपने दुष्कर्म के फलस्वरूप पंकप्रभा नरक में दुःख भोग रही है।' इसके बाद आचार्य ने यशोधर और चंद्रमति के संसार-भ्रमण की कहानी भी कह सुनाई। उसे सुनकर कुमार अभयरुचि और अभयमति को संसार के यथार्थ स्वरूप का फिर से ज्ञान हुआ। कहीं हम युवा होने पर फिर से इस संसार-जाल में न फंस जायं इस विचार से

उन्होंने तभी आचार्य सुदत्त के संघ में प्रवेश किया।'

इस प्रकार अपना यह वृत्तांत सुनाकर अभयरुचि मारिदत्त से बोला, "राजन् हम वे ही भाई-बहन हैं जिन्हें तुम्हारे चाण्डाल यहां लाये हैं। हमारे आचार्य भगवान सुदत्त नगर के बाहर ठहरे हैं उनकी आज्ञा से ही भिक्षा के लिए हम नगर में घूम रहे थे। तभी तुम्हारे इन सैनिकों ने हमपर यह कृपा की।"

: ५ :

राजकुमार अभयरुचि से यह शिक्षाप्रद कथा सुनकर राजा मारिदत्त को अपने आचरण पर बहुत खेद हुआ। उसने मन-ही-मन आचार्य सुदत्त को प्रणाम किया और निश्चय किया कि अब वह प्राणी-वध नहीं करेगा। आचार्य ने भी अपने दिव्य ज्ञान से सब वृत्तांत जानकर राजा को आशीर्वाद दिया और धर्म-मार्ग में स्थिर करने की इच्छा से नगर में प्रवेश किया।

उनके दर्शन कर मारिदत्त की राजसभा बहुत प्रसन्न हुई। विधिवत् पूजा की और कहा, "कृपा करके मुझे आप उपदेश दें, जिससे मेरा अज्ञान दूर हो।"

आचार्य ने कहा, "राजन्, जिस प्रकार हिंसा के

बुरे परिणाम देखकर तुमने उसका त्याग किया, उसी प्रकार असत्य और लोभ का भी तुम्हें त्याग करना चाहिए। मैं तुम्हें उन दोषों के भी पुराने उदाहरण कहता हूं, ध्यान देकर सुनो—

"पुराने समय में प्रयाग के समीप सिंहपुर में सिंहसेन राजा राज्य करता था। उसके पुरोहित का नाम श्रीभूति था। उसने अपनी सत्यवादिता की कीर्ति नगर में फैला रखी थी और 'सत्यघोष' उप-नाम धारण किया था। उसकी कीर्ति सुनकर बड़े-बड़े व्यापारी जब नगर से बाहर जाते तो, अपने मूल्यवान रत्न उसके पास रख जाते। एक बार भद्रमित्र नाम का एक व्यापारी समुद्र की यात्रा पर निकला और अपने सात मूल्यवान रत्न सत्यघोष के पास रख गया। सुवर्ण द्वीप पहुंचकर भद्रमित्र ने नाना वस्तुओं के व्यापार में काफी धन इकट्ठा किया। उसके पश्चात् वह वापस लौटा। दैवयोग से उसी समय तूफान आ गया और उसका जहाज टूट गया। जैसे-तैसे एक लकड़ी के सहारे वह किनारे लगा और बड़ी कठिनाई से सिंहपुर पहुंचा। सत्यघोष के पास जाकर उसने अपने रत्न वापस मांगे। किंतु सत्यघोष ने कहा, 'अरे, तुम पागल तो नहीं हो। शायद तुम्हें किसी भूत-पिशाच

ने पकड़ा है । ऐसे फटे-पुराने कपड़े पहनकर आये हो और रत्न मांगते हो । मैं क्या रत्न बांटनेवाला कुबेर हूं । मैंने तुम्हें कभी देखा तक नहीं ।' उसकी यह दुत्कार सुनकर भद्रमित्र के दिल पर गहरी चोट लगी । पागल-सा होकर वह इधर-उधर फिरने लगा और चिल्लाकर अपने लूटे जाने की कहानी सबको बताने लगा । सहसा रानी रामदत्ता ने उसका यह करुण विलाप सुना । उसकी मुख-मुद्रा देखकर उसे विश्वास हो गया कि यह सच कह रहा है । सत्यघोष ने उसे जरूर धोखा दिया है । दूसरे दिन उसने सत्यघोष को द्यूत खेलने को बुलाया । खेलते-खेलते जब सत्यघोष हार गया तो रानी ने अपने एक दांव में उसके अलंकार ले लिये । उन अलंकारों को उसने दासी के हाथ सत्यघोष की पत्नी के पास भेजा और कहलवाया, 'सत्यघोष द्यूत में हार गया है । दांव पूरा करने के लिए भद्रमित्र के रखे हुए रत्न उसने मंगाये हैं ।' सत्यघोष की पत्नी ने बहकावे में आकर सातों रत्न उस दासी को दे दिये । रानी ने यह कहानी राजा को बतलाई । उसे बड़ा अचरज हुआ । उसने भद्रमित्र को बुलाया और एक पात्र में अपने अनेक बहुमूल्य हीरों के साथ मिलाकर वे रत्न उसे दिखाये । भद्रमित्र ने बड़ी सावधानी से

उन्हें देखा और कम मूल्य के होने पर भी अपने सातों रत्न उठा लिये। यह देखकर राजा को सत्यघोष पर बहुत क्रोध आया। उसने उसका अनेक प्रकार से अपमान करके उसे नगर से निर्वासित कर दिया। बेचारा सत्यघोष अपने पाप-कर्म के फलस्वरूप इधर-उधर की ठोकरें खाता हुआ कुष्ट रोग से पीड़ित हुआ और अंत में नरक गति को प्राप्त हुआ।"

यह कथा सुनाकर आचार्य बोले, "राजन्, अब हम लोभ के दुष्परिणामों का भी एक उदाहरण देते हैं। पुराने समय में पांचाल देश के काम्पिल्य नगर में सागरदत्त नाम का एक व्यापारी रहता था। विरासत में उसे एक करोड़ रुपये प्राप्त हुए थे। व्यापार से भी उसे कोई पचास लाख रुपये का लाभ हुआ। किंतु इतना धन होने पर भी वह सदा लालच में फंसा रहता था। भोजन के लिए एक-एक दाने का हिसाब रखता था। उसे मीठे पकवान बनाना अच्छा नहीं लगता था क्योंकि उसमें बहुत-सा घी लगता था और ईंधन भी बहुत जलता था। पान खाने का मतलब वह केवल मुंह को सुगंधित करना है, ऐसा सोचकर इलायची का छिलका चबाकर संतोष कर लेता था। तेल के लिए भी वह कभी पैसा खर्च नहीं करता था।

बाजार में जाकर वह अपने बरतन में तेल लेता और फिर अच्छा नहीं है, ऐसा कहकर वापस कर देता। उस बरतन में जो तेल लगा रहता उसीसे वह अपना काम चलाता था। घर में बत्तियां न जलाकर उसने दीवार में बड़े-बड़े झरोखे बनवा रखे थे। पड़ौसियों के घरों से उन झरोखों में से जो प्रकाश आता था उसीसे वह अपना काम चलाता था। उसकी दूकान पर जो कपड़ा आता था उसे वह एक दिन पहनता और दूसरे दिन बेच देता। भोजन के लिए वह किसीका न्यौता स्वीकार नहीं करता था क्योंकि इससे उसे भी उन्हें कभी-न-कभी भोजन के लिए बुलाना ही पड़ता। इस प्रकार का आचरण करते हुए सागरदत्त मानो सारे कंजूसों का आचार्य बन गया था।

"एक दिन उस नगर के राजा का एक पुराना महल गिर गया। इस भूमि को साफ करने के लिए कारीगरों ने अच्छी-अच्छी ईंटें रखनी शुरू कीं। पुराने समय की इन ईंटों में सोना लगा था। किंतु धूल जम जाने के कारण वह दिखाई नहीं देता था। एक बार सागरदत्त को एक ईंट रास्ते में पड़ी मिली, पांव धोने के लिए वह उसे उठाकर ले गया। कुछ ही दिनों में उसकी सारी धूल धुल गई और बीच का सोना चमकने

लगा। अब क्या था सागरदत्त का लोभ जाग उठा। अनेक प्रकार का लालच देकर उसने ईंटें ढोनेवालों से ईंटें खरीदनी शुरू कीं। इसी बीच में उसकी बहन का लड़का मर गया। उसे बहन को धीरज देने के लिए जाना था। लेकिन जाने से पहले वह अपने लड़के को अधिक-से-अधिक ईंटें इकट्ठी करने के लिए कह गया। पर लड़का उसके समान लोभी नहीं था।

"उसने सोचा ये ईंटें राजा के महल की हैं। हम उन्हें खरीद रहे हैं। यदि राजा को यह बात मालूम हो गई तो वह हमको कड़ी सजा देगा। इसलिए उसने एक भी ईंट नहीं खरीदी। जब सागरदत्त लौटा तो बहुत क्रुद्ध हुआ। यहांतक कि उसने एक ईंट अपने पैर पर ही दे मारी। यदि मुझे चलना न आता तो मैं क्यों यहां से जाता। पिता-पुत्र के इस झगड़े का समाचार कारीगरों तक पहुंच गया और उन्होंने ईंटों की परीक्षा करके राजा को उनमें सोना होने की सूचना दे दी। सब बातें जानकर राजा सागरदत्त पर बहुत क्रुद्ध हुआ और अनेक प्रकार उसका अपमान करके उसको नगर से निकाल दिया।"

यह कथा सुनाकर आचार्य बोले, "राजन् इसी प्रकार असत्य और लोभ—ये दोनों विकार भी हिंसा के

समान ही छोड़ने योग्य हैं। इनसे पहले तो सुख मिलता जान पड़ता है लेकिन अंत में कठोर दुःख ही सहना पड़ता है। इसलिए विद्वानों को उचित है कि इनसे बचे रहें और शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए अहिंसा, सत्य और संतोष का आश्रय लें। यही धर्म है और यही कल्याण का मार्ग है।"

आचार्य का यह उपदेश सुनकर मारिदत्त और उसके सब प्रजाजन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़ी श्रद्धा से इस उपदेश का पालन किया और सारा यौधेय देश-प्रेम और शांति के संदेश से गूंज उठा।

'संस्कृत-साहित्य-सौरभ' की पुस्तकें

१. कादंबरी	१६. मेघदूत
२. उत्तररामचरित	१७. विक्रमोर्वशी
३. वेणी-संहार	१८. मालतीमाधव
४. शकुंतला	१९. शिशुपाल-वध
५. मृच्छकटिक	२०. बुद्ध-चरित
६. मुद्राराक्षस	२१. कुमारसंभव
७. नलोदय	२२. महावीर-चरित
८. रघुवंश	२३. रत्नावली
९. नागानंद	२४. पंचरात्र
१०. मालविकाग्निमित्र	२५. प्रियदर्शिका
११. स्वप्नवासवदत्ता	२६. वासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित	२७. रावणवध
१३. किरातार्जुनीय	२८. सौंदरनंद
१४. दशकुमार-चरित : भाग १	२९. कुंदमाला
१५. बशकुमार-चरित : भाग २	३०. यशस्तिलक

मूल्य प्रत्येक का छः आना

३०

छः आना